स्वाधीन भारत की राजनीति बन गयी। येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीतना, विधान सभा या लोक सभा में प्रवेश हो जाने के पश्चात् मंत्रिपदों की ओर आगे बढ़ने का रास्ता खोजना— यही है संक्षेप में राजनीतिक कार्यकर्ता की प्रातः से रात्री तक की दौड़धूप का मर्म। सत्ता प्राप्त करना और प्राप्त सत्ता को किसी भी प्रकार अपने हाथ से निकलने न देना — यही आज अधिकांश भारतीय राजनीतिज्ञों की मुख्य प्रेरणायें हैं। स्वाभाविक ही, इस मानसिकता ने ऐसी कार्यप्रणाली को जन्म दिया, जिसमें जनजीवन से प्रत्यक्ष नाता जोड़कर जन-सहयोग से सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया को खड़ा करने की बजाय सस्ती प्रदर्शनकारिता, विरोध के लिए विरोध एवं जोड़तोड़ के द्वारा चुनाव जीतने को ही सर्वोपरि महत्व दिया जाने लगा। प्रेस, प्लेटफार्म और प्रोटेस्ट पर आधारित कार्यप्रणाली ने ऐसे-ऐसे नेताओं को उभारकर सामने लाया है जो राष्ट्र के सामने विद्यमान सामाजिक-आर्थिक समस्याओं में गहरे पैठकर उनका व्यावहारिक हल खोजने की बजाय भेदों पर पलने वाली — संकुचित निष्ठाओं को उभाड़ने, जनमानस को भ्रमित करने के लिए आकर्षक वादों और उत्तेजक नारों को उछालने को ही राजनीतिक सफलता की एकमात्र कुँजी मानने लगा है। निश्चय ही, जोड़तोड़ और आंदोलन की राजनीतिक कार्यशैली में से उभरे हुए नेतृत्व के हाथों राष्ट्र निर्माण के लिए सत्ता का रचनात्मक उपकरण बन पाना असंभव है। राष्ट्र निर्माण हेतु सत्ता का रचनात्मक प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि सत्ताधारी को प्रत्यक्ष जनसहयोग, गहन चिन्तन एवं रचनात्मक प्रयोगों के माध्यम से समस्याओं के स्वरूप एवं उनके हल का व्यवहारिक ज्ञान हो। दुर्भाग्य से वर्तमान राजनीतिक कार्यशैली में इस रचनात्मक दृष्टि की कोई उपयोगिता ही नहीं रह गई। क्योंकि येन-केन-प्रकारेण चुनाव जीत जाना ही राजनीतिक सफलता की एकमात्र कसौटी बन गयी है।

इसका ही परिणाम है कि विगत तीस वर्षों में राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की दिशा में स्वाधीनता की मूल प्रेरणाओं एवं आदर्शों के अनुरूप आधारशिलाऐं तो रख ही नहीं पाये, उल्टे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उपजी राष्ट्रीय एकता को दुर्बल बनाने तथा सामाजिक एवं धार्मिक भेदों का पोषण करने की, भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा, भयंकर भूल हो रही है। अब तो यह लगने लगा है कि सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक भेद कायम रखने में ही राजनीतिज्ञों का निहित स्वार्थ हो गया है। अतः वर्तमान राजनीतिक प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण के लक्ष्य की पूर्ति तो दूर, बची-खुची राष्ट्रीय एकता भी खतरे में पड़ गई है। वस्तुतः इस संकट के लिए किसी विशिष्ट विचारधारा, दल अथवा व्यक्ति विशेष को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह संकट प्रचलित राजनीतिक कार्यशैली की ही देन है।

समग्र क्रान्ति आंदोलन क्यों ?

सर्वप्रथम लोकनायक जयप्रकाश जी ने राष्ट्र के इस रोग की जड़ को पकड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि विगत 30 वर्ष में हमारी राष्ट्रीय यात्रा एक भटकाव की यात्रा रही है। उसका स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान निरूपित राष्ट्रीय लक्ष्यों से संबंध विच्छेद हो चुका है और वह सत्ता के चारों ओर घूमने वाली बाँझ शैली के भंवर में फंस चुकी है। उसके भीतर से श्रेष्ठ, अनुशासित एवं उद्देश्यपूर्ण राष्ट्रजीवन का निर्माण असंभव है। इसलिए लोकनायक ने संपूर्ण क्रान्ति का नारा देकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय आदर्शों की पुर्नव्याख्या की आवश्यकता प्रतिपादित की। लोकनायक जयप्रकाश जी के संपूर्ण क्रान्ति आंदोलन का लक्ष्य एक दल को हटाकर दूसरे दल को सत्तारूढ़ करना नहीं था अपितु सत्ताभिमुखी राजनीतिक कार्यशैली का स्वस्थ विकल्प ढूँढ़ना था और एक प्रबल रचनात्मक आंदोलन की सृष्टि कर राजशक्ति पर रचनात्मक लोकशक्ति की महत्ता को पुर्नप्रतिष्ठित करना था।